प्राचीन भारत में चिकित्सा व्यवस्था

रामस्वरूप सिंह चौहान, पीएच.डी.
संयुक्त निदेशक (कैडराड)
पशु रोग शोध एवं निदान केन्द्र,
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर–243 122 (उ0प्र0)

प्राचीन भारत में चिकित्सा विज्ञान का ज्ञान एवं इसका प्रचार–प्रसार ऋषि–मुनियों एवं आचार्यो के अधिकार क्षेत्र में था तथा वे इस विषय की विभिन्न विधाओं में पारगंत थे। उन ऋषियों तथा आचार्यो ने चिकित्सा क्षेत्र से सम्बन्धित अपने अनुभवों को संहिता'' की रचना महर्षि चरक ने की थी। मगर आधुनिक काल में चिकित्सा की जानकारी व इसका प्रादुभाव हिप्पोकेट के पश्चात का बताया जाता है जो पूर्णतया तथ्यों से परे है व अंग्रेजो द्वारा एक सोची समझी रणनीति के तहत प्राचीन भारतीय चिकित्सा ज्ञान का पता होते हुए भी कहीं जिक्र न करना, ऐसा जान–बूझ कर किया जा रहा है। क्योंकि उन्होने प्राचीन भारतीय चिकित्सा ज्ञान के काफी विषयों का मूल विचार चुराकर अब अपना कर देखा है तो वह सत्य हुआ है। जिसे ये लोग अपने नाम से पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित कर अपना व अपने देश का नाम कर रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिकों/चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े बन्धुओं व शिक्षकों हेतु यह लेख उन मनीषियों को समर्पित है जिन्होने अपने जीवन की आहुति देकर चिकित्सा व्यवसाय को उन्नति के पथ पर अवसर किया।

प्राचीन भारत में चिकित्सा व्यवसाय का नाम आयुर्वेद में मित्रता ह जिसे चार श्रेणियों में बाँटा गया था। वनस्पतियों के लिए वृक्षायुर्वेद, जन्तुओं के लिए तियंगायुर्वेद, पशुओं के लिए गयायुर्वेद, अश्वायुर्वेद हस्त्यायुर्वेद तथा मनुष्य के लिए आयुर्वेद।

आयुर्वेद का अर्थ है जो आयु (प्राण शक्ति) को यथावत् रखने का ज्ञान कराये वही आयुर्वेद है। शरीर में प्राण ही सब कुछ है। प्राणों को स्वस्थ रखने की शिक्षा/ज्ञान ही आयुर्वेद है। मनुष्य के अन्तः करण के शोक की आधि कहते है तथा दे हके दुःख को व्यधि कहते है व ये दोनों ही प्राणों को हानि पहुँचाने वाले है। अतः आयुर्वेद दोनों की चिकित्सा करके शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय बताता है। आयुर्वेद (जीवन का विज्ञान,ैबपमदबम वि सपमि द्ध को महर्षि चरक ने इस प्रकार परिभाषित किया है 'आयुर्वेद वह शास्त्र है जिसमें हितायु, अहितायु, दुःखायु तथा सुखायु के लिए क्या हित है व क्या अहित है, आयु का मान क्या है एवं इसका स्वरूप क्या है आदि का वर्णन किया गया है। आयुर्वेद के दो प्रमुख प्रयोजन है।

1. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थय की रक्षा करना
2. रोगी के रोगों का शमन करना

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि भगवान विष्णु ने अपने अंश को समुद्र मंथन से अमृत कलश के साथ उत्पन्न किया था जिसे भगवान धन्वन्तरि के नाम से जाना जाता है। भगवान धन्वन्तरि ने अमृत रूपी औषध का सृजन कर देवताओं को हमेशा के लिए अजर (वृद्धावस्था से रहित), अमर (मृत्यु रहित) तथा निरामय (सब प्रकार के आधि–व्याधि और रोग–शोक से मुक्त) बना दिया। धन्वन्तरि का वर्णन द्वापर युग में भी मिलता है जहाँ काशी के राजा महाराज धन्व के यहां पुत्र रूप में अवतरित होकर अपने आयुर्वेद की स्थापना की व पृथ्वी पर आयुर्वेद के आठो अंगों शल्य, शालाक्या, काय चिकित्सा, भूत विद्या, कौमारभृत्य, अगद तन्त्र रसायन

तन्त्र तथा बाजीकरण तंत्र को स्थापित किया। धन्वन्तरि का जन्म कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी (2500 वर्ष ईसा पूर्व) माना जाता है तथा इसी दिन इनकी जयन्ती भी मनायी जाती है।

आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों में काश्यप संहिता, चरक संहित, सुश्रत संहित, भेड़ संहिता तथा भारद्वाज संहिता में से काश्यप संहिता को अति प्राचीन माना गया है। इसमें महर्षि कश्यप ने शंका समाधान की शैली में दुःखात्मक रोग, उनके निदान, रोगों का पशरिहार तथा रोग परिहार के साधन (औषध) इन चारों विषयों का भी श्प्रकार प्रतिपादन किया गया है। इसके पश्चात जीवक ने काश्यप संहिता को संक्षिप्त कर 'वृद्ध जीवकीय तंत्र' नाम से प्रकाशित है। 1. कौमार भृत्य, 2. शल्य क्रिया प्रधान शल्य, 3. शालाक्य, 4. वाजीकरण, 5. प्रधार रसायन, 6. शारीरिक –मानसिक चिकित्सा, 7. विष प्रशमन तथा 8. भूत विद्या। इसी से यह 'अष्टांग आयुर्वेद कहताला है।

पुनः इन विषयों को प्रतिपादन के अनुसार आठ स्थानों में विभक्त किया गया इनमें सूत्र स्थान में 30 निदान स्थान में 12, चिकित्सा सथान में 30, सिद्धि में 12, कल्प स्थान में 12, तथा खिल स्थान/भाग में 80 अध्याय है। इस प्रकार आचार्य वात्स्य ने कुल 200 अध्यायों में वृद्ध जीवकीय तंत्र को संसंस्कृत कर आर्युविज्ञान का प्रचार प्रसार किया। वृद्ध जीवकीय तंत्र नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है।

ईसा पूर्व 2350–1200 के लगभग शलिहोत्र नामक अश्व विशेषज्ञ हुए है जिन्हें पशु चिकित्सा का ज्ञान था। इन्होने हेय आयुर्वेद, अश्व प्राशन तथा अश्व लक्षण शास्त्रम की रचना की। इसे '' शालिहोत्र संहि'' भी कहा जाता है। इसमें 12000 श्लोक है। इन्हें विश्व का प्रथम पषु चिकित्सक माना जाता है।

मुनि पालकाप्य का काल 1800 वर्ष ईसा पूर्व माना जाता है जिन्हें विशाल ग्रन्थ हस्ति आयुर्वेद की रचना की थी। इसमें चार खण्ड तथा 152 अध्याय है। महाभारत काल में आयुर्वेद अपने चरम पश्र माना गया है। यह काल 1000 से 900 वर्ष ईसा से पूर्व का माना जाता है। इस समय में नकुल आयुर्वेद द्वारा अश्व चिकित्सा तथा सहदेव गोचिकित्सा के विशेषज्ञ थे। इस काल में विभिन्न प्रकार की औषधियों से घायल सैनिकों के उपचार का वर्णन मिलता है।

चरक संहिता के रचियता महर्षि चरक, महर्षि आत्रेय, महामेघा, अग्निवेश तथादृढबल रहे है मगर महर्षि चरक का नाम विशेष रूप से प्रतिष्ठित हो गया। ये संहिताकार ऋषि एक उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे। महर्षि चरक ने वनस्पतिजन्य विभिन्न दवाओं के निर्माण एवं उन्हें लिपिवद्ध करने के अतिरिक्त उनश्का घूम–घूमकर प्रचार–प्रसार भी किया। इसी कल्याकारी विचरण किया से उनका नाम चरक विश्व प्रसिद्ध हो गया। चरक संहिता के अध्ययन से पूरी जीवन शैली आहार चर्या ऋतु चर्या, रात्रि चर्या आदि का सम्यक ज्ञान हो जाता है तथा तदनुसार यदि व्यक्ति अनुसारण करे तो वह सदा निरोग रह सकता है। यह काल गुप्त वंश के शासन काल का रहा है व सन् 300 से 500 ई0 के बीच का है।

आचार्य सुश्रुत प्राचीन काल के एक उच्च कोटि के आयुर्वेदाचार्य एवं शल्य चिकित्सक थे। सुश्रत महर्षि विश्वामित्र के पुत्र थे तथा इन्होने धन्वन्तरि जी शल्य–शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। ऐसा विश्वास है कि पृथ्वी पर शल्य तन्त्र के जनक यही सुश्रुत है। इन्होने भी एक ग्रन्थ की रचना की जिसका शीर्षक ''सुश्रुत संहिता'' रखा। इस पश्तक में 5 अध्याय हैं जिनमें सूत्र स्थान निदान स्थान, शरीर स्थान, चिकित्सा स्थान तथा कल्प स्थान आदि शामिल है। सुश्रुत के अनुसार मन एवं शरीर को पीड़ित करने वाली वस्तु को शल्य कहा जाता है। तथा इस शल्य को निकालने के साधन यंत्र कहलाते है। आयार्य सुश्रुत ने अपने इस ग्रंथ में 100 से भी अधिक शल्य यंत्रों का वर्णन किया है तथा उनके गुणों के विषय में विस्तार से प्रकाश डाला है। आचार्य सुश्रुत आँखों के मोतिया बिन्दु की शल्य क्रिया के विशेषज्ञ थें यदि माता के गर्भ से शिशु योनि मार्ग से न आता हो तो गर्भस्थ शिशु को शल्यस क्रिया द्वारा

माता के गर्भ से सुरक्षित निकालने की कई विधियों सुश्रुत अच्छी तरह जानते थे। आजकल जिन यंत्रों का उपयोग शल्य क्रिया में होता है उनमें से अधिकांश यंत्रों का वर्णन सुश्रुत संहिता में मिलता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद कहा जाता है आयुर्वेद तथा शल्य–चिकित्सा शास्त्र के आचार्य गणों का जगत पर महान उपकार है। इनके नाम इस प्रकार है।

1. ब्रहमा
2. दक्ष प्रजापति
3. भगवान भाष्कर
4. अश्वनी कुमार
5. इन्द्र
6. महर्षि कश्यप
7. महर्षि अत्रि
8. महर्षि भृगु
9. महर्षि अंगिरा
10. महर्षि वरिष्ठ
11. महर्षि अगस्त्य
12. महर्षि पुलस्त्य
13. ऋषि वाम देव
14. ऋषि गौतम
15. ऋषि असित
16. ऋषि भरद्वाज
17. आचार्य धन्वन्तरि
18. आचार्य पुनर्वसु आत्रेय
19. आचार्य अग्निवेश
20. आचार्य भेल
21. आचार्य जतूकर्ण
22. आचार्य पाराशर
23. आचार्य हारीत
24. आचार्य सिद्ध नागार्जुन
25. आचार्य क्षारपाणि
26. आचार्य निमि
27. आचार्य भद्रशौनक
28. आचार्य काकांयन
29. आचार्य गार्म्य
30. आचार्य गालव
31. आचार्य सात्यकि
32. आचार्य औषधेनव
33. आचार्य सौरभ
34. आचार्य पौठक लावत
35. आचार्य करवीर्य
36. आचार्य गोपुर रंक्षित
37. आचार्य वैतरण
38. आचार्य भोज,
39. आचार्य भालुकी
40. आचार्य दारूक
41. आचार्य कौमार भृत्य
42. आचार्य जीवक
43. ,आचार्य काश्यप
44. आचार्य उशना
45. वृहस्पति
46. आचार्य पतजंलि

आयुर्वेद के इतिहास पुरूष जीवक कैंसर भृत्य का कालखण्ड लगभग 500 वर्ष ई0 पू0 माना जाता है। जब मगध के सम्राट बिन्धिसार थें। सम्राट बिम्विसार को भगन्दर हो गया। परन्तु जीवक द्वारा निर्मित औषध के एक ही लेप से सम्राट ने रोग से मुक्ति पा ली। इसी प्रकार जीवक ने नगर सेठ की खोपड़ी का सफल आपरेशन (शल्य क्रिया) कर फिर सी दिया व उसमें से मवाद और कीड़े निकाल दिये। सभवतः यह मस्तिष्क की पहल शल्य क्रिया होगी। जीवक की शल्य चिकित्सा के विषय में और भी प्रमाण मिलते है। उन्होने वाराणसी के नगर सेठ के पेट से आँतों की गाँठों का शल्य क्रिया द्वारा सफल उपचार किया। पेट को चीरकर आँतें बाहर

निकाली तथा आँतों के खराब भाग को काटकर फैंक दिया तथा शेष को पुनः सीकर ठीक कर दिया। जीवक ने भगवान बुद्ध का भी उपचार किया था।

आयुर्वेद में जिन तीन आचार्यो की गणना मुख्यरूप से होती है उनमें चरक, सुश्रुत के बाद वारभट का नाम आता है। इन्होने अष्टांग हृदय ग्रन्थ की रचना की। इनका कालखण्ड छठी सदी का माना जाता है। यह श्पूरा ग्रन्थ सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्प स्थान तथा उत्तर भारत आदि में विभक्त है। यह ग्रन्थ आयुर्वेद का सार माना जाता है। आचार्य वार भट का कहना है कि इस ग्रन्थ में कोई कपोल कल्पित बात नहीं कही गयी है बल्कि यह ग्रन्थ पूर्वाचार्यो के अभिमतो तथा अनुभव के आधार पर किया गया है। इस ग्रन्थ के पठन–पाठन, मनन एवं प्रयोग करने से निश्चय ही दीर्घ जीवन आरोग्य धर्म, अर्थ, सुख तथा यश की प्राप्ति होती है।

आचार्य माधव ने एक विशिष्ट ग्रन्थ का लेखन किया जिसका नाम ''रोग विनिश्चय'' रखा। यह ग्रन्थ माधव निदान के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य माधव ने रोग ज्ञान के पाँच साधश्न बताये है। निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय तथा सम्प्राप्ति आचार्य माधव का समय छठी सदी के अन्त का बताया जाता है। आचार्य माधव ने अतिसार, पाण्डु, क्षय रोग आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

आचार्य शांर्गधर को नाड़ी शास्त्र का विशोषश्र माना गया है। इन्होने 13 वीं – 14 वीं सदी के दौरान दो ग्रन्थों ''शांर्गधर संहिता तथा शांर्गधर पद्धति'' की रचना की। आचार्य हाथ में कच्चे धागे के सूत्र के एक सिरे को बांधकर दूसरे सिरे को पकड़कर नाड़ी गति का ज्ञान करके रोग एवं रोगों के सम्बन्ध में सब कुछ सत्य–सत्य बना देते थे।

आयुर्वेद की आचार्य परम्परा में श्रीभावमिश्र का नाम भी विशेष महत्व रखता है। इन्होने भाव प्रकाश ग्रन्थ की रचना की। इनका कालखण्ड 16 वीं सदी का माना गया है। इन्होंने समस्त व्यक्तियों को दो भागों में विभक्ति किया–1, कर्मज अर्थात जो दुष्कर्म के पशरिणामस्वरूप फलित होती है तथा भोग/प्रायश्चित से उनका विनाश होता है। इसके विपरीत दूसरे प्रकार की दोषज व्यधियाँ हैं जो मिथ्या आहार–विहार करने से कुपित हुए बात, पित्त एवं कफ से होती है।

सोलहवीं शताब्दी में रचित ''वैद्याचिन्तामणि'' का आयुर्वेद में विशेष रूप से आन्ध्रप्रदेश में। क्योंकि यह आचार्य बल्लभाचार्य द्वारा तेलगु लिपि में लिखी गयी है। यह ग्रन्थ 26 भागों में विभक्त है। मंगलाचारण के बाद पंच निदान के साथ'–साथ अष्ट स्थान परीक्षा का विवरण है। जिसमें पहले नाड़ी परीक्षा है। नाड़ी का जितना विस्तार से वर्णन यहीं मिलता है उतना अन्य किसी प्रचीन ग्रन्थ में शायद नहीं मिलता। हाथ के साथ–साथ पाँव के मूल नाड़ी परीक्षा, स्त्रियों के बायें तथा पुरूषों के दांये हाथ की नाड़ी परीक्षा का विधान बताया गया है। प्रत्येक रोग की चिकित्सा के लिए चूर्ण, कषाय, वटी, अवलेह, घृत, तेल, अर्जन तथा धूम का उल्लेख है। ग्रन्थ के तेईस भागों में विभिन्न प्रकार के रोगों को वर्णन है व क्षय रोग के उपचार का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

वैद्य लोलिम्बराज का समय 17वीं शताब्दी के पूर्वार्थ का माना गया है। इन्होने वैद्य जीवन नामक शास्त्र की रचना की। लोलिम्बराज कवित्व सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होने वैद्य–जीवन पाँच भागों में विभक्त है इसमें ज्वर, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कास–श्वास, आमवात, कामला, स्तन्यदुष्टि, प्रदर, क्षय, व्रण अम्लपित्त, प्रमेह आदि रोगों तथा वाजीकरण और विविध रसायनों का उल्लेख है। वैद्य लोलिम्बराज रोगी के लिए पथ्य सेवन अतिहितकर बताते हुए कहते हैं कि रोी यदि पथ्य सेवन से रहे तो उसे औषध सेवन से क्या प्रयोजन।

चिकित्सा से सम्बन्धित प्राचीन साहित्य संस्कृत भाषा में उपलब्ध होने के कारण आम आदमी से दूर ही रहा है। जिसमें आज उसे विस्मृत कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन साहित्य का अंग्रेजों ने अध्ययन किया व उससे प्रेरणा लेकर ही चिकित्सा विज्ञान के अनुसंधान की दिशा तय की । मगर हम उनके पिछलग्गू बनकर रह गये। हमारे यहां आयुर्वेद का ज्ञान होते हुए भी

तथाकथित अंग्रेजी प्रशिक्षित चिकित्सकों ने उसे नकार दिया। मगर अब समय आ गया है कि आयुर्वेद मूल की दवाओं का वैज्ञानिक परीक्षण कर विभिन्न रोगों पर उन्हें आजमाया जाये। क्योंकि नयी चिकित्सा पद्धति में मुख्य दवा 'एण्टीबायेटिक'' अब बेअसर हो चली है तथा सम्भतः कुछ बर्षो पश्चात वे अपना असर पूर्णरूप से खो देंगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी मानता है कि सन् 2020 तक ये दवाऐं कारगर नहीं रहेगी। अतः वनस्पति जन्य/आयुर्वेद मूल की दवाओं का भविष्य में उपयोग बढ़ने वाला है। हमें अपने आपको इसके लिए तैयार करना होगा। हम पहले भी चिकित्सा क्षेत्र में आगे थे। अब भी सबसे आगे चलकर दिखाना होगा कि भारतीय चिकित्सा पद्धति आयेर्वेद ही श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धति है व इसका एक लम्बा इतिहास है। यह हमारे पूर्वजों की विरासत है इसे अपनाकर अपना जीवन निरोग तथा सुखपूर्वक व्यतीत किया जा सकता है।

भारतीय सांस्कृतिक धरोहर आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का इक्कसवीं सदी में महत्व

रामस्वरूप सिंह चौहान, पीएच.डी.
संयुक्त निदेशक (कैडराड)
पशु रोग शोध एवं निदान केन्द्र,
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर–243 122 (उ0प्र0)

आजकल अनेकों प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां मानव रोगों के उपचार के लिए प्रचलित हैं। जिनमें प्रमुख रूप से एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी, नेचुरोपैथी, यूनानी, चुम्बक चिकित्सा, एक्यूपंचर आदि सम्मिलित है। हमारे देश में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का इतिहास बहुत पुराना है व इसमें देशी जड़ी बूटियों द्वारा ही अनेक रोगों का उपचार किया जाता रहा है। मगर कालानतर में यह पद्धति अपनी विश्वसनीयता खो बैठी क्योंकि इसमें कई प्रकार के अवांछित, स्वार्थो व नश्मारात्मक सोच के व्यक्ति सक्रिय हो गये तथा दुर्भाग्य से व्यवस्था ऐसे लोगों के हाथों में पहुंच गयी जो इसके ज्ञान को आगे बढ़ाना नहीं चाहते थे तथा दूसरों को नहीं बताते थे। फलस्वरूप आयुर्वेद का ज्ञान व अनुभव व्यक्ति विशेष के साथ ही दफन होता चला गया व लिखित रूप में अथवा प्रमाणिक रूप में अल्प ज्ञान ही बचा रहा। देश की स्वतंत्रता मिलने के पश्चात भी इस विषय की ओर पर्याप्त ध्यान हीं दिया गया जिसका परिणाम यह रहा कि हमारी अपनी चिकित्सा पद्धति अन्य चिकित्सा प्रणालियों से पिछड़ती गयी । विशेष रूप से एलोपैथी (पश्चिमी जगत की देन) की ओर लोगों का झुकाव बढ़ा।

बीसवीं सदी में प्रतिजैविक दवाओं (एण्टीबायोटिक) खोज ने चिकित्सा व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन कर दिये। सबसे पहले पैनिसिलीन की खोज हुई व उसके पश्चात आज तक नित नये प्रतिजैविक तत्व खोजे जाते रहेहैं। इन प्रतिजैविक दवाओं ने जैसे चिकित्सा जगत में क्रान्ति ही ला दी क्योंकि असाध्य समझे जाने वाले रोग जैसे तपेटिक, हैजी, प्लेग, न्यूमोनिया, दस्त, टाइफाइड आदि रोगों पर काबू पा लिया गया। मगर 21 वीं सदी आते –आते यह प्रतिजैविक दवाएं अपना प्रभाव खोने लगी तथा उल्टे इनके कुप्रभाव भी शुरू हो गये। आज हम ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं कि प्रतिजैविक दवाओं के रहे–सहे प्रभाव कुछ वर्षो में समाप्त हो जायेंगें। उसके पश्चात हमारे पास जीवाणु जनित रोगों के उपचार के लिए कुछ नहीं रह जारयेगा तो ऐसी स्थिति में मानव का क्या होगा? इस विषय पर चिन्ता उठना स्वाभाविक है क्योंकि जीवन की पहली आवश्यकता है ''निरोगी काया'' यानी अच्छा स्वास्थ्य। यदि शरीर निरोगी रहेगा तो व्यक्ति कुछ भी कार्य प्रसन्नतापूर्वक कर सकता है। पश्चिमी विकसित देश इस समस्या से अनभिज्ञ नहीं है व इससे रूबरू होना शुरू हो गये है। अभी सन् 1998 में नीदरलैण्ड में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसका विषय था ''बीसवी सदी की आश्चर्यजनक प्रतिजैविक दवाएं अब कारगर नहीं रहीं तथा 21वीं सदी में वैकल्पिक चिकित्सा व्यवस्था कैसी हो''। इस गोष्ठी में लेखक को भी आमन्त्रित किया गया था तथा वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रबन्धन द्वारा शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाने के लिए जड़ी–बूटियों की उपयोगिता पर अपना शोध प्रस्तुत किया था जिसकी बहुत सराहना की गयी व इस पद्धति को अपनाने के लिए गहन अनुसंधान पर जोर दिये जाने पर अपनी संस्तुति भी दी।

आजकल की दैनिक दिनचर्या को देखें तो पता चलता है कि हमारे वातावरण में प्रदूषण इतना फैला हुआ है कि एक सामान्य व्यक्ति निरोगी रह ही नहीं सकता, क्योंकि हमारे पर्यावरण में हवा, पानी भोजन सभी विभिन्न प्रकार के घातक रसायनों यथा कीटनाशक, जैवनाशक, भारी धातुएं आदि से प्रदूषित है। जो शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को कम करते हैं। व शरीर अन्दरूनी तौर पर कमजोर होता

जाता है। फलस्वरूप व्यक्ति बार–बार बीमार पड़ता है। नयी–नयी बीमारियां होती हैं व सामान्य दवाओं से व्यक्ति ठीक नहीं हो पाता है तथा ठीक हो भी जाये तो व्यक्ति पुनः शीघ्र ही बीमार पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में एलोपैथी दवाओं की उपयोगिता पर भी प्रश्न चिन्ह लग जाता है क्योंकि ये दवायें एक ओर रोग को ठीक करती है वहीं अपने कुप्रभाव शरीर पर डालती है क्योंकि इनके नाम के अनुरूप (एण्टीबायोटिक–जीवाणुओं के विरूद्ध) यानी नमारात्मक सोच का पशरिणाम है। जबकि भारतीय पद्धति में शरीर की पुष्ट किया जाता है तो एक सकारात्मक सोच है जिसमें लाभदायक जीवाणु नष्ट नही होते बल्कि शरीर को निरोक बनाने में अपना योगदान करते हैं।

भारतीय पद्धति में जड़ी बुटियों द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार किया जाता हैं ये वनस्पति जन्य औषधियां सिर्फ उतना ही प्रभाव डालती हैं जिससे शरीर रोग रहित होकर सामान्य हो जाता है, अतः इनका शरीर पर कुप्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इनमें दोनों प्रकार के तत्व होते हैं जो यदि एक तत्व किसी प्रकार की चीज को कम करता है तो दूसरा बढ़ाता हैं यदि सिर्फ एक तत्व को अलग कर रासायनिक रूप से कृत्रिम बना लिया जाय जो उसका प्रभाव एक तरफा हो जाता है व उसमें प्राकृतिकता नहीं रहती है। फलस्वरूप कालान्तर में ये भी अपना दुष्प्रभाव डालना शुरू कर देते हैं। अतः आयुर्वेद मूल की वनस्पतिजन्य औषधियां तभी अधिक कारगर होती है जब इन्हें बिना मूल तत्व के नष्ट हुए ही उपयोग किया जाये।

प्रत्येक जीव में रोग प्रतिरोधी तंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस तंत्र का प्रभावी रूप में कार्य करना जीवन के लिए आवश्यक है। यहीं इसकी अधिकता भी शरीर के लिए घातक होती है। बिना रोग प्रतिरोधी तंत्र के जीवन की आशा करना व्यर्थ है। भोगवादी एवं पश्चिमी सभ्यता से ओत–प्रोत मानव प्रकृति ने एड्स जैसा रोग दिया जिसके विषाणु शरीर के रोग प्रतिरोधी तंत्र व इसकी कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं। यदि रोग प्रतिरोधी तंत्र व इसकी कोशिकाओं को इतना मजबूत बना दिया जाये कि शरीर में ये रोग ही न होने दें तो यह मानव सभ्यता के लिए सबसे बड़ा उपकार होगा। आयुर्वेद मूल की जड़ी बूटियों द्वारा रोग प्रतिरोधी तंत्र को मजबूत बनाने की दिशा में अनुसंधान व शोथ की आवश्यकता है ताकि शरीर में रोग ही न लगये या बहुत ही हल्के से होकर रह जाये व शरीर को अधिक हानि न पहुंच पाये। इसी दिशा में लेखक ने अश्वगंधा, तुलसी, गिलोय, गेहूंघास आदि श्पर आधुनिकतम मशीनों व तकनीकों द्वारा परीक्षण किये हैं जिसके आशानुरूप परिणाम निकले हैं। यदि गहन अनुसंधान कर एक ऐसी सस्ती व कारगर दवा विकसित की जाती है जो मानव के रोग प्रतिरोधी तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालती है तो इससे शरीर इतना पुष्ट हो जायेगा कि उसमें पर्यावरण प्रदूषण/जीवाणु/विषाणु /फफूदी आदि द्वारा विकास उत्पन्न नहीं होंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एलोपैथी में अभी तक ऐसी कोई कारगर दवा नहीं है। इस प्रकार की एक ही दवा शरीर के समस्त रोगों के लिए पर्याप्त होगी जब कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रत्येक रोग के लिए अलग–अलग दवा या टीके की आवश्यकता पड़ती है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में आयुर्वेद अधिक व्यापक विज्ञान है जिसमें रोगों के उपचार के साथ–साथ आयु व जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने पर भी जोर दिया जाता है। आयुर्वेद सिर्फ एक चिकित्सा प्रणाली ही नहीं है बल्कि एक समय जीवन पद्धति है।

हितोंहितं सुख दुःख आयु तस्त हितोतिम्।

मानं च वच्च यत्रोक्तं आयुर्वेद सःउच्यते।।

अर्थात जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु का वर्णन हो तथा आयु के लिए हित–अहिंत, आहार–विहार एवं औषध का वर्णन हो वह आयुर्वेद कहलाता है। आयुर्वेद विज्ञान के दो प्रयोजन है स्वस्थ्य रक्षणम् अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करनां आतुरस्य विकार प्रशमनम् अर्थात रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना।

इस चिकित्सा में गुणों से प्रभावित होकर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी आयुर्वेद दवाओं की खोज एवं अनुसंधान पर विशेष बल दिया है। अमेरिका जैसे विकसित देश भी आज–कल जड़ी बूटियों के द्वारा चिकित्सा पर जोर दे रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में भारत को

विश्व का मार्गदर्शन करना है व विश्वगुरू का स्थान प्राप्त करना है। इस संदर्भ में यह कहतना अनुचित न होगा कि हमारे देश के चिकित्सा विज्ञानी इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें तथा भारतीय मूल की जड़ी–बूटियों पर अनुसंधान कर इन्हें वैज्ञानिक मान्यता दिलाएं तथा भारत को खोया गौरव दिलाने में अपना योगदान करें। साथ ही हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारी जैव सम्पदा को विदेशी लोग न ले जाये। इसके लिए पेटेन्ट पर एक समय नीति के तहत, चिकित्सकीय दृष्टि से उपयोगी वनस्पतियों के उत्पादन पर जोर देना होगा आयुर्वेदिक शिक्षण–प्रशिक्षण में आधुनिकतम मशीनों का उपयोग कर वैज्ञानिक रूप से दवाओं को मान्यता दिलवाना चाहिए ताकि भारत विश्व में गौरव पा सके।